श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 3

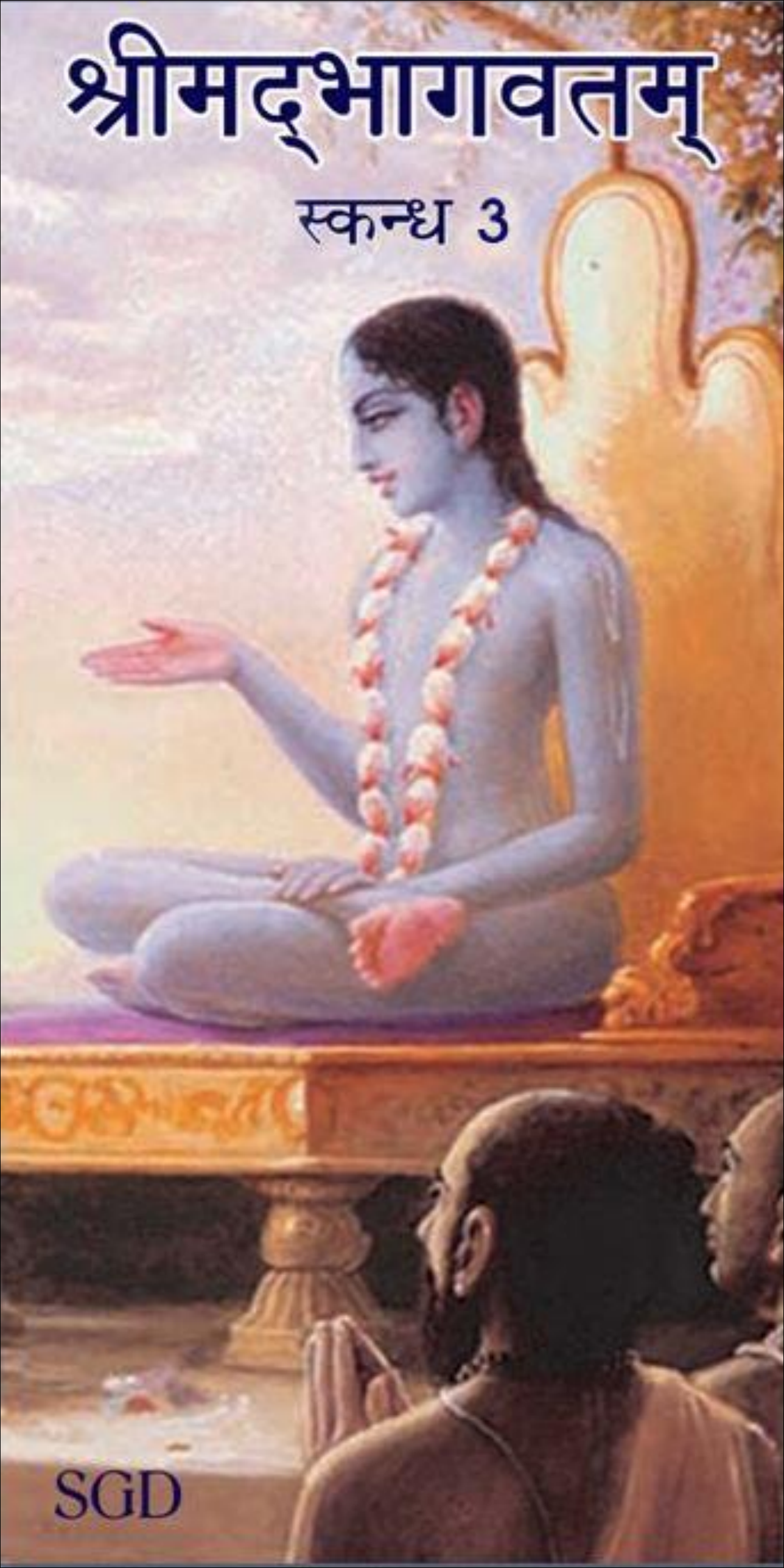

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 6

विश्व रूप की सृष्टि

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: मैत्रेय ऋषि ने कहा : इस तरह भगवान् ने महत्-तत्त्व जैसी अपनी शक्तियों के संयोग न होने के कारण विश्व के प्रगतिशील सृजनात्मक कार्यकलापों के निलम्बन के विषय में सुना।

श्लोक 2: तब परम शक्तिशाली भगवान् ने अपनी बहिरंगा शक्ति, देवी काली सहित तेईस तत्त्वों के भीतर प्रवेश किया, क्योंकि वे ही विभिन्न प्रकार के तत्त्वों को संमेलित करती हैं।

श्लोक 3: इस तरह जब भगवान् अपनी शक्ति से तत्त्वों के भीतर प्रविष्ट हो गये तो सारे जीव प्रबुद्ध होकर विभिन्न कार्यों में उसी तरह लग गये जिस तरह कोई व्यक्ति निद्रा से जगकर अपने कार्य में लग जाता है।

श्लोक 4: जब परम पुरुष की इच्छा से तेईस प्रमुख तत्त्वों को सक्रिय बना दिया गया तो भगवान् का विराट विश्वरूप शरीर प्रकट हुआ।

श्लोक 5: ज्योंही भगवान् ने अपने स्वांश रूप में विश्व के सारे तत्त्वों में प्रवेश किया, त्योंही वे विराट रूप में रूपान्तरित हो गये जिसमें सारे लोक

और समस्त जड़ तथा चेतन सृष्टियाँ टिकी हुई हैं।

श्लोक 6: विराट पुरुष जो हिरण्मय कहलाता है, ब्रह्माण्ड के जल में एक हजार दैवी वर्षों तक रहता रहा और सारे जीव उसके साथ शयन करते रहे।

श्लोक 7: विराट रूप में महत् तत्त्व की समग्र शक्ति ने स्वत: अपने को जीवों की चेतना, जीवन की क्रियाशीलता तथा आत्म-पहचान के रूप में विभाजित कर लिया जो एक, दस तथा तीन में क्रमश: उपविभाजित हो गए हैं।

श्लोक 8: भगवान् का विश्वरूप प्रथम अवतार तथा परमात्मा का स्वांश होता है। वे असंख्य जीवों के आत्मा हैं और उनमें समुच्चित सृष्टि (भूतग्राम) टिकी रहती है, जो इस तरह फलती फूलती है।

श्लोक 9: विश्वरूप तीन, दस तथा एक के द्वारा इस अर्थ में प्रस्तुत होता है कि वे (भगवान्) शरीर तथा मन और इन्द्रियाँ हैं। वे ही दस प्रकार की जीवन शक्ति द्वारा समस्त गतियों की गत्यात्मक शक्ति हैं और वे ही एक हृदय हैं जहाँ जीवन-शक्ति सृजित होती है।

श्लोक 10: परम प्रभु इस विराट जगत की रचना का कार्यभार सँभालने वाले समस्त देवताओं के परमात्मा हैं। इस तरह (देवताओं द्वारा) प्रार्थना किये जाने पर उन्होंने मन में विचार किया और तब उनको समझाने के लिए अपना विराट रूप प्रकट किया।

श्लोक 11: मैत्रेय ने कहा : अब तुम मुझसे यह सुनो कि परमेश्वर ने अपना विराट रूप प्रकट करने के बाद किस तरह से अपने को देवताओं के विविध रूपों में विलग किया।

श्लोक 12: उनके मुख से अग्नि अथवा उष्मा विलग हो गई और

भौतिक कार्य सँभालने वाले सारे निदेशक अपने-अपने पदों के अनुसार इस में प्रविष्ट हो गये। जीव उसी शक्ति से शब्दों के द्वारा अपने को अभि-व्यक्त करता है।

श्लोक 13: जब विराट रूप का तालू पृथक् प्रकट हुआ तो लोकों में वायु का निदेशक वरुण उसमें प्रविष्ट हुआ जिससे जीव को अपनी जीभ से हर वस्तु का स्वाद लेने की सुविधा प्राप्त है।

श्लोक 14: जब भगवान् के दो नथुने पृथक् प्रकट हुए तो दोनों अश्विनीकुमार उनके भीतर अपने-अपने पदों पर प्रवेश कर गये। इसके

फलस्वरूप जीव हर वस्तु की गन्ध सूँघ सकते हैं।

श्लोक 15: तत्पश्चात् भगवान् के विराट रूप की दो आँखें पृथक् हो गईं। प्रकाश का निदेशक सूर्य दृष्टि के आंशिक प्रतिनिधित्व के साथ उनमें प्रविष्ट हुआ जिससे जीव रूपों को देख सकते हैं।

श्लोक 16: जब विराट रूप से त्वचा पृथक् हुई तो वायु का निदेशक देव अनिल आंशिक स्पर्श से प्रविष्ट हुआ जिससे जीव स्पर्श का अनुभव कर सकते हैं।

श्लोक 17: जब विराट रूप के कान प्रकट हुए तो सभी दिशाओं के

नियंत्रक देव श्रवण तत्त्वों समेत उनमें प्रविष्ट हो गये जिससे सारे जीव सुनते हैं और ध्वनि का लाभ उठाते हैं।

श्लोक 18: जब चमड़ी की पृथक् अभिव्यक्ति हुई तो अपने विविध अंशों समेत संस्पर्श नियंत्रक देव उसमें प्रविष्ट हो गये। इस तरह जीवों को स्पर्श के कारण खुजलाहट तथा प्रसन्नता का अनुभव होता है।

श्लोक 19: जब विराट रूप के जननांग पृथक् हो गये तो आदि प्राणी प्रजापति अपने आंशिक वीर्य समेत उनमें प्रविष्ट हो गये और इस तरह जीव यौन आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

श्लोक 20: फिर विसर्जन मार्ग पृथक् हुआ और मित्र नामक निदेशक विसर्जन के आंशिक अंगों समेत उसमें प्रविष्ट हो गया। इस प्रकार जीव अपना मल-मूत्र विसर्जित करने में सक्षम हैं।

श्लोक 21: तत्पश्चात् जब विराट रूप के हाथ पृथक् हुए तो स्वर्गलोक का शासक इन्द्र उनमें प्रविष्ट हुआ और इस तरह से जीव अपनी जीविका हेतु व्यापार चलाने में समर्थ हैं।

श्लोक 22: तत्पश्चात् विराट रूप के पाँव पृथक् रुप से प्रकट हुए और विष्णु नामक देवता (भगवान् नहीं) ने उन में आंशिक गति के साथ प्रवेश

किया। इससे जीव को अपने गन्तव्य तक जाने में सहायता मिलती है।

श्लोक 23: जब विराट रूप की बुद्धि पृथक् रुप से प्रकट हुई तो वेदों के स्वामी ब्रह्मा बुद्धि की आंशिक शक्ति के साथ उसमें प्रविष्ट हुए और इस तरह जीवों द्वारा बुद्धि के ध्येय का अनुभव किया जाता है।

श्लोक 24: इसके बाद विराट रूप का हृदय पृथक् रूप से प्रकट हुआ और इसमें चन्द्रदेवता अपनी आंशिक मानसिक क्रिया समेत प्रवेश कर गया। इस तरह जीव मानसिक चिन्तन कर सकता है।

श्लोक 25: तत्पश्चात् विराट रूप का भौतिकतावादी अहंकार पृथक् से प्रकट हुआ और इसमें मिथ्या अंहकार के नियंत्रक रुद्र ने अपनी निजी आंशिक क्रियाओं समेत प्रवेश किया जिससे जीव अपना लक्ष्यित कर्तव्य पूरा करता है।

श्लोक 26: तत्पश्चात् जब विराट रूप से उसकी चेतना पृथक् होकर प्रकट हुई तो समग्र शक्ति अर्थात् महतत्त्व अपने चेतन अंश समेत प्रविष्ट हुआ। इस तरह जीव विशिष्ट ज्ञान को अवधारण करने में समर्थ होता है।

श्लोक 27: तत्पश्चात् विराट रूप के सिर से स्वर्गलोक, उसके पैरों से पृथ्वीलोक तथा उसकी नाभि से आकाश पृथक्-पृथक् प्रकट हुए। इनके भीतर भौतिक प्रकृति के तीन गुणों के रूप में देवता इत्यादि भी प्रकट हुए।

श्लोक 28: देवतागण, अति उत्तम गुण, सतोगुण के द्वारा योग्य बनकर, स्वर्गलोक में अवस्थित रहते हैं, जबकि मनुष्य अपने रजोगुणी स्वभाव के कारण अपने अधीनस्थों की संगति में पृथ्वी पर रहते हैं।

श्लोक 29: जो जीव रुद्र के संगी हैं, वे प्रकृति के तीसरे गुण अर्थात् तमोगुण में विकास करते हैं। वे पृथ्वीलोकों तथा स्वर्गलोकों के बीच आकाश में स्थित होते हैं।

श्लोक 30: हे कुरुवंश के प्रधान, विराट अर्थात् विश्व रुप के मुख से वैदिक ज्ञान प्रकट हुआ। जो लोग इस वैदिक ज्ञान के प्रति उन्मुख होते हैं, वे ब्राह्मण कहलाते हैं और वे समाज के सभी वर्णों के स्वाभाविक शिक्षक तथा गुरु हैं।

श्लोक 31: तत्पश्चात् विराट रूप की बाहुओं से संरक्षण शक्ति उत्पन्न हुई और ऐसी शक्ति के प्रसंग में समाज

का चोर-उचक्कों के उत्पातों से रक्षा करने के सिद्धान्त का पालन करने से क्षत्रिय भी अस्तित्व में आये।

श्लोक 32: समस्त पुरुषों की जीविका का साधन, अर्थात् अन्न का उत्पादन तथा समस्त प्रजा में उसका वितरण भगवान् के विराट रूप की जाँघों से उत्पन्न किया गया। वे व्यापारी जन जो ऐसे कार्य को संभालते हैं वैश्य कहलाते हैं।

श्लोक 33: तत्पश्चात् धार्मिक कार्य पूरा करने के लिए भगवान् के पैरों से सेवा प्रकट हुई। पैरों पर शूद्र स्थित होते हैं, जो सेवा द्वारा भगवान् को तुष्ट करते हैं।

श्लोक 34: ये भिन्न-भिन्न समस्त सामाजिक विभाग, अपने-अपने वृत्तिपरक कर्तव्यों तथा जीवन परिस्थितियों के साथ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से उत्पन्न होते हैं। इस तरह अबद्धजीवन तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए मनुष्य को गुरु के निर्देशानुसार परम प्रभु की पूजा करनी होती है।

श्लोक 35: हे विदुर, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अन्तरंगा शक्ति द्वारा प्रकट किये गये विराट रूप के दिव्य काल, कर्म तथा शक्ति को भला कौन माप सकता है या उसका आकलन कर सकता है?

श्लोक 36: अपनी असमर्थता के बावजूद मैं (अपने गुरु से) जो कुछ सुन सका हूँ तथा जितना आत्मसात् कर सका हूँ उसे अब शुद्ध वाणी द्वारा भगवान् की महिमा के वर्णन में लगा रहा हूँ, अन्यथा मेरी वाक्शक्ति अपवित्र बनी रहेगी।

श्लोक 37: मानवता का सर्वोच्च सिद्धिप्रद लाभ पवित्रकर्ता के कार्यकलापों तथा महिमा की चर्चा में प्रवृत्त होना है। ऐसे कार्यकलाप महान् विद्वान ऋषियों द्वारा इतनी सुन्दरता से लिपिबद्ध हुए हैं कि कान का असली प्रयोजन उनके निकट रहने से ही पूरा हो जाता है।

श्लोक 38: हे पुत्र, आदि कवि ब्रह्मा एक हजार दैवी वर्षों तक परिपक्व ध्यान के बाद केवल इतना जान पाये कि भगवान् की महिमा अचिन्त्य है।

श्लोक 39: पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आश्चर्यजनक शक्ति जादूगरों को भी मोहग्रस्त करने वाली है। यह निहित शक्ति आत्माराम भगवान् तक को अज्ञात है, अत: अन्यों के लिए यह निश्चय ही अज्ञात है।

श्लोक 40: अपने-अपने नियंत्रक देवों सहित शब्द, मन तथा अहंकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को जानने में असफल रहे हैं। अतएव हमें

विवेकपूर्वक उन्हें सादर नमस्कार करना होता है।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव